आई.एस.एस.एन. संख्या : 2454–2458
नवरचना NAVRACHNA
www.grefiglobal.org/journals/navrachna2016
वर्ष 2, अंक 1–2, जून–दिसम्बर 2016, पृ. 3–16

वैश्वीकरण और ग्रामीण संचार व्यवस्थाएं

वीरेन्द्र पाल सिंह

वैश्वीकरण की प्रक्रिया (निजीकरण और उदारीकरण के साथ) न केवल विकासशील देशों को प्रभावित कर रही हैं। अपितु विकसित देशों को भी प्रभावित कर रही हैं। वैश्वीकरण को विश्व स्तर पर लोगों की बढ़ रही पारस्परिक निर्भरता के रुप मे परिभाषित किया जा सकता है; इसको एकाकी वैश्विक बाजार में रहने के प्रभाव के रुप में देखा जा सकता है, परन्तु मूल रुप से इसका सम्बन्ध हमारे जीवन की संस्थाओं में हो रहे परिवर्तन से है (गिडिन्स 1999). वैश्वीकरण की इस प्रक्रिया ने जहाँ एक ओर समाज वैज्ञानिकों मे एक बहस को जन्म दिया है वहीं दूसरी ओर नीति निर्माताओं को भी इसे एक नीति के रुप में अपनाने पर भी बाध्य किया है। वैश्वीकरण जहाँ आज आर्थिक नीति का अभिन्न अंग है तथा इसके पक्ष व विपक्ष में अनेकों विद्वानों, ने विचार व्यक्त किये है कई एक मुद्दों पर इसके विरुद्ध आन्दोलन भी खड़े हो गये हैं। वैश्वीकरण के साथ–साथ पिछले कुछ वर्षों में संचार के क्षेत्र में उपग्रहों के उपयोग ने विश्व स्तर पर संचार की सुविधा प्रदान की है। इस उपग्रह तकनीक तथा कम्प्यूटर तकनीकी के प्रयोग से एक नवीन प्रकार की संचार व्यवस्था ने जन्म लिया है जिसे हम 'वैश्विक संचार व्यवस्था' (global communucation system) की संज्ञा दे सकते हैं। संचार की इस नवीन व्यवस्था की प्रमुख विशेषता इसकी वैश्विक स्तर पर संचार स्थापित करने ही क्षमता है जो इसे पूर्व की संचार व्यवस्थाओं से अलग करती है। प्रस्तुत शोध पत्र में भारत में वैश्वीकरण तथा संचार व्यवस्था में हो रहे परिवर्तनों के फलस्वरुप ग्रामीण संचार की व्यवस्था में हो रहे परिवर्तनों पर प्रकाश डाला जायेगा। प्रथम भाग में वैश्वीकरण की अवधारणा को प्रस्तुत किया गया है ; द्वितीय भाग में संचार व्यवस्थाओं के प्रकारों की विवेचना की गयी है तथा तृतीय भाग मे भारत के ग्रामीण क्षेत्रों की संचार व्यवस्था में पिछले दो दशकों में हुए परिवर्तनों का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।

---

*प्रोफेसर एवं पूर्व विभागाध्यक्ष, सेन्टर फॉर ग्लोबेलाइजेशन एण्ड डवलेपमेन्ट स्टडीज, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद– 211 002 उ. प्र.।

वैश्वीकरण की अवधारणा

सामान्य रुप से वैश्वीकरण को परिवर्तन की एक ऐसी प्रक्रिया के रुप में देखा जा सकता है जो विश्व के सभी क्षेत्रों में आर्थिक, तकनीकी, राजनीति, संचार माध्यम, संस्कृति तथा पर्यावरण आदि सभी को विभिन्न तरीकों से प्रभावित करती है। डेविड हैल्ड व उनके सहयोगियों (1999:2) के अनुसार, "वैश्वीकरण को प्रारम्भिक रुप से समकालीन सामाजिक जीवन के सभी पक्षों –सांस्कृतिक से अपराधिक, वित्तीय से आध्यात्मिकता में विश्वव्यापी अन्तःसंबद्धता के विस्तारीकरण, (widening) गहनीकरण (deepening) तथा तीव्रीकरण (speeding up) के रुप में विचारा जा सकता है।"

विद्वानों में वैश्वीकरण के अन्तःसंबद्धता वाले पक्ष पर तो सहमति है परन्तु इसके अन्य पक्षों पर उनमें भारी मतभेद हैं। डेविड हैल्ड ने वैश्वीकरण पर कार्य करने वाले विद्वानों को तीन प्रमुख श्रेणियों में विभाजित किया हैः अतिशयवादी; संशयवादी तथा रुपान्तरणवादी।

वैश्वीकरण पर अतिशयवादी सोच रखने वाले विद्वानों का विश्वास है कि वैश्वीकरण मानव इतिहास में एक नये युग का प्रतिनिधित्व करता है, जिसमें सभी प्रकार के सम्बन्ध राष्ट्र–राज्यों से ऊपर उठ कर विश्व स्तर पर एकीकृत हो रहे है तथा इसके परिणामस्वरुप इन्हें (राष्ट्र–राज्यों को) निरन्तर अप्रासंगिक बना रहे हैं। पूंजी, वस्तुओं, व्यक्तियों तथा विचारों के निरन्तर बढ़ रहे सीमापार प्रवाह इस युग को पुनः दो उप–श्रेणियों में रखा जा सकता है। सकारात्मक अतिशय वादी तथा नकारात्मक अतिशयवादी। सकारात्मक अतिशयवादी मुख्य रुप से वे विद्वान है जो खुले विश्व बाजार की वकालत करते है और यह मानते हैं कि यह प्रक्रिया भविष्य मे चरम आर्थिक वृद्धि की गारंटी देगी तथा दीर्घकाल मे, प्रत्येक व्यक्ति के जीवन स्तर में सुधार ले आयेगी (ओहमे 1991:1995); तथा नकारात्मक अतिशयवादी जिनमें प्रमुख रुप से आलोचनावादी चिंतक (critical theorists) तथा नव–मार्क्सवादी विद्वान (मार्टिन एवं शू मैन 1997; रीच 1991; बैक 1997; श्नेपर 1994; वाइजमैन 1997, हॉपकिन्स व वालेरस्टीन 1996) सम्मिलित है, वैश्वीकरण के नकारात्मक प्रभावों को आलोचनात्मक रुप से प्रस्तुत करते हुए वैश्वीकरण की अवधारणा को पूर्णरुप से अस्वीकृत कर देते हैं।

संशयवादी विद्वान भी वैश्वीकरण के आर्थिक पक्ष पर ही अपना ध्यान केन्द्रित करते हुए यह तर्क देते है कि इस अन्तराष्ट्रीय आर्थिक एकीकरण की प्रक्रिया में कुछ भी नया नहीं है। प्रथम विश्व युद्ध के पूर्व काल से इसकी तुलना की जा सकती है। वे वैश्वीकरण के स्थान पर 'अन्तर्राष्ट्रीयकरण' शब्द का प्रयोग करना सही मानते है (हिर्स्ट एवं थाम्पसन 1996; वीज 1997)। वे यह भी तर्क देते है कि राष्ट्र–राज्यों की भूमिका अभी भी उतनी है मजबूत है जितनी हमेशा रही है।

रुपान्तरणवादी विद्वान जबकि यह तर्क देते हैं कि उन सभी प्रमुख आर्थिक, सांस्कृतिक, सामाजिक तथा राजनीतिक परिवर्तनों, जो आज विश्व के सभी व्यक्तियों का आभासी रुप से (virtually) प्रभावित कर रहे हैं, की केन्द्रीय संचालक शक्ति वैश्वीकरण है। वे वैश्वीकरण को तकनीकी, आर्थिक गतिविधि, शासन–विधि (governance), संचार आदि के क्षेत्रों में परिवर्तन की निकट रुप से जुड़ी हुई प्रक्रियाओं के कुल परिणाम के रुप में देखते हैं। इन सभी क्षेत्रों में होने वाले विकास परस्पर सुदृढ़ता प्रदान करने वाले अथवा स्वतुल्य (reflexive) होते है जिससे कि कारण तथा परिणाम के मध्य कोई भेद नहीं किया जा सकता। रुपान्तरवादी (व्यापार, निवेश,

प्रवजन, सांस्कृतिक शिल्पकृतियों (artifects), पर्यावरणीय कारको आदि के) सीमापार प्रवाहों के समकालीन प्रतिमानों को किसी भी ऐतिहासिक दृष्टान्त से भिन्न मानते हैं। इस प्रकार के प्रवाह सभी राष्ट्रो को आभासी रुप से एक विश्व व्यवस्था में एकीकृत करते है तथा सभी स्तरों पर एक बड़ा परिवर्तन लाते हैं। इस प्रकार वैश्वीकरण का प्रभाव केवल आर्थिक तथा राजनीतिक प्रक्रियाओं तक ही सीमित नहीं है अपितु इसके प्रभाव को संचार तथा सामाजिक व सांस्कृतिक संस्थाओं पर भी देखा जा सकता है।

भारत में वैश्वीकरण

भारत में वैश्वीकरण की प्रक्रिया का प्रारम्भ 1990 के दशक के प्रारम्भिक वर्षों में हुआ। इससे पूर्व भारत की अर्थव्यवस्था मिश्रित अर्थव्यवस्था (mixed econimy) थी जिसमें प्राइवेट तथा सार्वजनिक दोनों ही क्षेत्रों के विकास पर बल दिया गया था। आर्थिक प्राथमिकता के क्षेत्रों को सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों के रुप मे स्थापित किया गया जिनका स्वामित्व व नियन्त्रण राष्ट्रीय सरकार के हाथ में रखा गया तथा अन्य क्षेत्रों मे निजी–प्रतिस्पर्धा को बढ़ावा देने हेतु खुला रखा गया। परन्तु 1990 तक सार्वजनिक क्षेत्र के कुछ उपक्रमों ने जहाँ राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के विकास में अच्छा योगदान किया तो वही अन्य कई उपक्रमों में अप्रभावी प्रबन्धन, लालफीताशाही आदि समस्याओं के फलस्वरुप वे अलाभकारी इकाईयों मे बदल कर सरकार पर बोझ बन गयीं। इसके अतिरिक्त भारत का विदेशी मुद्रा कोष भी दयनीय स्थिति मे पहुँच गया था। यह एक ऐसा काल था जब अर्न्तराष्ट्रीय मुद्रा कोष से ऋण लेने के लिए व्यापार के क्षेत्र में कुछ आवश्यक शर्तों का निर्धारण कर दिया गया था जिन्हें डंकल प्रस्ताव (dunkal proposal) के नाम से जाना जाता था। सभी राष्ट्रों पर विश्व व्यापार संगठन द्वारा व्यापार हेतु एक संधि पर हस्ताक्षर करने हेतु दबाव डाला जा रहा था, जिसे गैट (General Agreement on Tarrifs and Trade-GATT) के नाम से जाना जाता है। इस सन्धि पर हस्ताक्षर करने के पश्चात कोई भी राष्ट्र नयी आर्थिक नीति–जिसके तीन प्रमुख संघटक–वैश्वीकरण, निजीकरण तथा उदारवाद थे, को अपनाने के लिए बाध्य था (सिंह 2005:1)। भारत ने वर्ष 1993 में गैट संधि पर हस्ताक्षर किये तथा इसके साथ ही भारत में वैश्वीकरण का दौर प्रारम्भ हुआ। जिसके फलस्वरुप आर्थिक सुधारों की प्रक्रिया द्वारा भारतीय अर्थ–व्यवस्था को नयी वैश्विक अर्थव्यवस्था (New Global Economy) से जोडने का कार्य प्रारम्भ हुआ। इसके साथ ही भारत ने संचार के क्षेत्र में एक नयी क्रान्ति का प्रादुर्भाव अगले दो दशकों में हो गया।

संचार व्यवस्थाओं के प्रारुप

लुसियन डब्ल्यू पाई (1963:24-29) ने संचार व्यवस्था के तीन प्रारुपों का उल्लेख किया हैः परम्परागत संचार व्यवस्था; आधुनिक संचार वयवस्था; तथा संक्रमण शील संचार व्यवस्था। परम्परागत समाजों में संचार प्रक्रिया की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता इसका एक व्यवस्था के रुप में दूसरी सामाजिक प्रक्रियाओं इसका कोई भिन्न स्वरुप नहीं था। परम्परागत व्यवस्थाओं में व्यवसायिक संचार कर्ताओं का नितान्त अभाव था। तथा इस प्रक्रिया में भाग लेने वाले सभी व्यक्ति ऐसा समुदाय में अपनी सामाजिक अथवा राजनीतिक प्रस्थिति के आधार पर अथवा मात्र अपने सहयोग के सम्बन्धों के आधार पर करते थे। सूचना का प्रवाह प्रायः सामाजिक सोपान क्रम के साथ अथवा प्रत्येक समुदाय में सामाजिक सम्बन्धों के व्यक्तिगत क्रम में होता था। इस प्रकार परम्परागत समाजों में संचार की

प्रक्रिया सामाजिक सम्बन्धों की व्यवस्था अथवा संचार की विषय वस्तु से स्वतन्त्र नहीं थी। अब क्योंकि संचार प्रक्रिया परम्परागत समाज की संरचना से इतना अधिक से सम्बद्ध थी कि सभी सम्प्रेषणों का मूल्यांकन व्याख्या तथा प्रतिउत्तर की प्रक्रिया सीधे तौर पर संचारकर्ता तथा प्राप्तकर्त्ता के मध्य पाये जाने वाले विवेचन द्वारा रंगी होती थी। आज भी कई संक्रमणशील समाजों में विभिन्न संचार माध्यमों की प्रमाणिकता का मूल्यांकन सूचना के स्त्रोत् से उनके व्यक्तिगत सम्बन्ध की महत्ता के आधार पर करने की एक ठोस प्रवृत्ति पायी जाती है।

एक आधुनिक संचार व्यवस्था में दो अवस्थाएं अथवा स्तर सम्मिलित होते हैं। इनमें से पहला, उच्च संगठित, स्पष्ट रुप से संरचित जन संचार माध्यम है। तथा दूसरे, वे अनौपचारिक जनमत मार्गदर्शक होते हैं जो कुछ सीमा तक परम्परागत व्यवस्थाओं की भाँति ही आमने–सामने से संचार क्रिया करते हैं। संचार प्रक्रिया का जनसंचार माध्यम वाला भाग औद्योगिक तथा प्रोफेशनल दोनों स्वरुप लिए होता है तथा यह देश की प्रशासनिक तथा सामाजिक प्रक्रियाओं दोनों से अपेक्षाकृत स्वतन्त्र होता है। एक उद्योग तथा एक प्रोफेशन दोनों ही रुपों में संचार का आधुनिक क्षेत्र विशिष्ट तथा सार्वभौमिक मानकों से स्वनिर्देशित होता है। विशेष रुप से जनसंचार व्यवस्था इस प्रस्थापना पर संचालित होती है कि घटनाओं की वस्तुनिष्ठ तथा निष्पक्ष रिपोर्टिंग करना सम्भव है तथा राजनीति को एक उदासीन तथा अपक्षपाती (non-partison) दृष्टिकोण से अच्छी तरह से देखा जा सकता है। यही कारण है कि पक्षपाती प्रेस भी वस्तुनिष्ठ दिखायी देने का प्रयास करती है।

एक आधुनिक संचार व्यवस्था जनसंचार माध्यमों के अलावा कहीं अधिक चीजें सम्मिलित होती है; सामान्य तथा विशेषज्ञ अनौपचारिक जनमत मार्गदर्शकों के मध्य, तथा जागरुक तथा निष्क्रिय जनता के मध्य जटिल अर्न्तसम्बन्ध सम्पूर्ण संचार व्यवस्था के अभिन्न अंग हैं। अवश्य ही, आधुनिक औद्योगिक समाजों में निरन्तर बढ़ रहे यान्त्रिक संचारों तथा भौतिक यात्राओं तथा विशेषज्ञता एव विषयों के प्रभावशाली संगठनों की निरन्तर बढ़ोतरी से, विरोधाभासी तरीके से, सीधे मुख के द्वारा संचार पर निर्भरता में वृद्धि हुई है।

आधुनिक संचार व्यवस्था की महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि दोनों स्तरों के मध्य व्यवस्थित सम्बन्ध रहते हैं जिससे कि संचार की पूरी क्रिया समुचित रुप से 'द्वि–पद प्रवाह' (two-step flow) से जुड़ा देख सकते हैं। विशेष रुप से, राजनीतिक संचार केवल जन संचार माध्यम पर ही निर्भर नहीं करता अपितु प्रोफेशनल संचार कर्ताओं तथा वयकितगत तथा आमने–सामने के संचार माध्यमों के नेटवर्कों में प्रभावशाली पदों पर आसीन व्यक्तियों के मध्य एक संवेदनशील अन्तःक्रिया होती है। इन सभी से परे, दोनों स्तरों के बीच अन्तःक्रियाएँ प्रतिपुष्टि (फीड–बैक) कार्यविधियों की स्थापना के रुप में होती है। जो सन्देशों के विभिन्न स्वरुपों की अर्न्तवस्तु तथा प्रवाह में समायोजन/अनुकूलन उत्पन्न करते हैं। जनसंचार माध्यमों के लिए उत्तरदायी व्यक्तियों को निरन्तर इस बात की जानकारी उपलब्ध होती रहती है कि उनके सम्प्रेषण उन सभी व्यक्तियों द्वारा किस प्रकार से ग्रहण किये जा रहे है जो संचार के अनौपचारिक प्रतिमानों पर नियन्त्रण रखते हैं। इसी प्रकार, वे जो अनौपचारिक प्रतिमानों को जीवन्तता प्रदान करते हैं अपनी क्रियाओं को निरन्तर उन तरीकों से समायोजित करते रहते है जिन्हें जनसंचार माध्यम किसी भी समय जनमत को परिवर्तित करने हेतु उपयोग करते हैं।

संक्षेप में, आधुनिक संचार व्यवस्थाएं संचारों की उच्च तकनीकियों तथा व्यवसायिक प्रक्रियाओं (professional process) को व्यक्ति से व्यक्ति के संचारों अनौपचारिक, समाज– आधारित, तथा गैर विशेषज्ञ प्रक्रियाओं का विलयन (fusion) हैं। इससे हमें ज्ञात होता है कि संचार–व्यवस्थाओं के आधुनिकीकरण का मापन केवल इस पर पूर्णतः अथवा प्राथमिक रुप से इस बात से सम्बन्धित नही है कि इन संचार व्यवस्थाओं में किस सीमा तक आधुनिक तकनीकी को इन समाजों में प्राप्त कर लिया गया है; इसके बदले आधुनिकीकरण का वास्तविक परीक्षण इस बात से किया जाना चाहिये कि जनसंचार माध्यमों तथा अनौपचारिक आमने–सामने की संचार व्यवस्था में कितनी प्रभावशाली 'फीड–बैक' प्रणाली है। इस प्रकार आधुनिकीकरण संचार की औपचारिक संस्थाओं तथा संचार की सामाजिक प्रक्रियाओं के मध्य एकीकरण पर उस सीमा तक टिका होता है जिस सीमा तक ये परस्पर संवेदनशीलता से प्रतित्तुर देती हैं।

इन सभी विवेचनों को ध्यान में रखते हुए हम संक्रमणशील संचार व्यवस्थाओं की आवश्यक विशेषताओं पर प्रकाश डालते है। संरचनात्मक रुप मूल विचार इसकी द्विविभाजनकारी तथा विखण्डित प्रकृति है क्योंकि यह प्रायः एक व्यवस्था में घटती–बढ़ती मात्रा में मिलती है जो आधुनिक तकनीकी पर निर्भर है, नगरीय केन्द्रित है; तथा इसकी पहुँच जनसंख्या के अधिक नगरीकृत भाग तक होती है; तथा साथ ही यह एक जटिल व्यवस्था है जो परम्परागत व्यवस्थाओं की उन विभिन्न मात्राओं में पुष्टि करते हैं जिनमें यह आमने–सामने के सम्बन्धों पर निर्भर करते हैं तथा सामाजिक तथा सामुदायिक जीवन के प्रतिमानों को मानने के लिए बाध्य होते हैं। इसकी आवश्यक विशेषता यह है कि दोनों स्तर तथा पृथक भाग निकट रुप से एकीकृत नहीं होते तथा प्रत्येक एक न्यूनाधिक स्वचालित संचार व्यवस्था का प्रतिनिधित्व करता है।

संक्रमणशील समाज में नगर आधारित संचार प्रक्रियाएं पृथक ग्राम–आधारित व्यवस्थाओं को केवल अनियमित रुप से भेद पाती हैं। यहाँ तक कि किसी भी देश में सम्पर्क का कोई व्यवस्थित प्रतिमान प्रायः नहीं मिलता, तथा विशेष जाति स्वभाव की प्रवृत्तियाँ किसी भी समुदाय मे उन व्यक्तियों का निर्धारण करने मे निर्णायक होती हैं कि जो जनसंचार माध्यमों के सन्देशों का सम्प्रेषण तथा व्याख्या स्थानीय व्यवस्था के सहभागियों को करने मे भूमिका का निर्वाह करते हैं। एक समुदाय से दूसरे समुदाय तक इन संचारकर्ताओं की विशिष्ट सामाजिक और आर्थिक प्रस्थिति में अन्तर इस बात पर निर्णायक प्रभाव डाल सकते है कि विभिन्न उप–व्यवस्थाएं, जन संचार व्यवस्था से किस प्रकार से सम्बन्धित हैं। निश्चित रुप से, अधिकतर संक्रमणशील समाजों के विभिन्न भागों मे गांव आपस में कम मात्रा में संचार रखते है जितना कि वे पृथक रुप से नगरीय केन्द्रों से रखते हैं। इस प्रकार ये एक ऐसे पैटर्न का निर्माण करते हैं जिसकी तुलना साइकिल के एक ऐसे पहिये से की जा सकती है जिसमें तिल्लियाँ (spokes) तो धुरी (hub) से जुड़े है परन्तु जिसका कोई बाह्य रिम (rim) नहीं है अथवा तिल्लियों में बिना किसी प्रकार के सीधे सम्बन्ध के। इस प्रकार हम देखते हैं कि संक्रमणशील संचार व्यवस्था में ग्रामीण तथा नगरीय व्यवस्थाएं पृथक व विखण्डित होती है जिससे सूचना का प्रवाह सुचारु रुप से नहीं होता।

अतः राजनीतिक विकास की अधिकतर समस्याएं उन तरीकों पर विचार करने से है जिनके द्वारा इस प्रकार की विखण्डित संचार व्यवस्थाएं एक राष्ट्रीय व्यवस्था में अधिक प्रभावी रुप से एकीकृत हो जाती हों। तथा जो मानवीय सहयोग के अनौपचारिक प्रतिमानों की अखण्डता को फिर

भी बनाये रखने मे सक्षम हो। इस प्रकार विकास में जन संचार माध्यमों की व्यवस्था का राष्ट्र के सभी सामुदायिक आयामों मे निरन्तर बढ़ता प्रभावी भेदन सम्मिलित है; जबकि इसी समय अनौपचारिक (संचार) व्यवस्था को जनसंचार व्यवस्था से अन्तःक्रिया करने की क्षमता भी विकसित कर लेनी चाहिये जिससे कि वह संचार के बड़े प्रवाह का लाभ उठा सके, साथ ही अपने सहभागियों में समुदाय की भावना भी बनाये रखे। यहाँ पर यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि विकास की प्रक्रिया आधुनिकीकृत, नगरीय अथवा जनसंचार व्यवस्था पर अधिक निवेश करने की अपेक्षा इस बात पर अधिक निर्भर करती है कि अनौपचारिक ग्रामीण व्यवस्थाओं का परस्पर तथा जनसंचार व्यवस्था में कितना समायोजन हो रहा है। निश्चित रुप से आधुनिक क्षेत्र में आवश्यकता से अधिक निवेश इनके मध्य और अधिक असंतुलन को उत्पन्न कर देगा तथा इस प्रकार से संक्रमणशील संचार व्यवस्था और अधिक मात्रा द्विविभाजित हो जायेगी।

इन तीनों संचार व्यवस्थाओं में सूचना सम्प्रेषण के परिमाण, (volume) वेग, (speed) तथा (accuracy) विशुद्धता की दृष्टि से भी अन्तर पाये जाते हैं। एक आधुनिक संचार व्यवस्था समरुप सन्देशों के प्रवाह को एक बडी मात्रा में विस्तृत श्रोता समूह तक प्रेषित करने की क्षमता रखती है। इसके विपरीत परम्परागत व्यवस्था केवल सीमित परिमाण में सन्देशों को प्रेषित कर सकती है, वह भी बहुत धीमी गति से, यद्यपि कुछ तथ्यात्मक समाचार बहुत तीव्र गति से फैल सकते हैं तथा इसके पुनरावृत्ति में कई भिन्ताएं हो सकती हैं। जनसंचार व्यवस्था में संचार के विशुद्ध परिमाण मे प्रवाह सम्भव होने का अर्थ, आधुनिक व्यवस्था में अनौपचारिक, व्यक्ति से व्यक्ति के स्तर पर प्रकार्य का अधिकतम भाग व्यापक प्रवाह से विशिष्ट सूचनाओं को अलग करके विशिष्ट श्रोताओं के उपभोग हेतु उपलब्ध कराना है। अतः जनमत मार्गदर्शकों की भूमिका विशिष्ट विषयों के साथ समय तथा ऊर्जा का निवेश करने की है तथा यह आश्वस्त करने की है कि उन पर निर्भर व्यक्तियों तक विशेष विषय से सम्बन्धित सूचना पूर्ण तथा यथाशीघ्र पहुँच जाये। बहुत अधिक मात्रा में सन्देशों के प्रसारण का एक अर्थ यह भी है कि सूचनाओं के अथाह प्रवाह में कई सन्देश आसानी से विलुप्त हो जाते हैं। तथा इनक पर व्यापक श्रोताओं का ध्यान आकर्षित करने के लिए इनका पुर्नप्रसारण कुछ निश्चित समयान्तराल पर करना आवश्यक होता है।

एक परम्परागत व्यवस्था में संचार प्रक्रिया में सक्रिय सहभागिता को रोकने की प्रमुख समस्या घटना के पूर्ण–चित्रण करने हेतु सूचनाओ की अपर्याप्त मात्रा थी। अतः व्यक्ति जनमत मार्गदर्शकों के पास समुदाय को टुकड़ो मे प्राप्त की हुई सूचनाओं का अर्थ जानने के लिए जाते थे। जनमत मार्गदर्शक की कुशलता इस बात में निहित थी कि वह उपस्थित लोगों द्वारा टुकड़ों में प्राप्त सूचनाओं के संकेतो को एक साथ जोड़कर उनकी विस्तार से व्याख्या कर सके। इस प्रकार से परम्परागत व्यवस्था समुदाय के बुद्धिमान व्यक्तियों तथा काल्पनिक कथा कहने वालों की भूमिका पर निर्भर करती थी जिन्हें सत्य का भांप लेने के लिए कुछ शब्द ही काफी थे, तथा जो सूचनाओं के सीमित प्रवाह को विस्तार दे सकते थे।

एक संक्रमणकालीन व्यवस्था में परम्परागत और आधुनिक दोनों प्रकार की संचार व्यवस्थाओं की विशेषताओं का मिश्रण पाया जाता है। इन व्यवस्थाओं में प्रायः संचार के परिमाण, वेग तथा प्रवाह की अविरलता को बनाये रखने तथा नियन्त्रण करने के लिए आवश्यक प्रणलियों का अभाव होता है। संक्रमणशील समाजों में संचार प्रक्रिया के जन–सम्पर्क साधनों के क्षेत्र सामान्य रुप से

सूचना प्राप्ति व प्रसार के लिए विदेशी तथा अर्न्तराष्ट्रीय सूचना तन्त्रों पर बड़ी मात्रा में निर्भर करते हैं ; परन्तु उनके पास यह चुनने का कोई आसान उपाय नहीं होता कि इसमें से किन सूचनाओं को पुनः प्रसारण किया जाये। इसके परिणाम स्वरुप प्रसारित सूचनाओं में महत्व तथा उपयुक्तता की दृष्टि से अनियमितता का तत्व होता है। इससे भी अधिके गम्भीर समस्या ऐसे जनमत मार्गदर्शकों का अभाव पाया जाना है जो जनसंचार माध्यम द्वारा प्रसारित अथाह सन्देशों से महत्वपूर्ण सन्देशों को चुनकर अलग कर सकें तथा विशिष्ट श्रोताओं का इस ओर ध्यान आकर्षित कर सकें। परम्परागत व्यवस्थाओं पाये जाने वाले व्यक्ति जो कुछ सीमा तक सक्रियावादी होते है तथा आमने–सामने की संचार व्यवस्था मे महत्वपूर्ण पदों पर होते हैं उनका विशिष्ट कौशल संचार के अथाह प्रवाह से महत्वपूर्ण सूचनाओं को चुनने की अपेक्षा अल्प–सूचना को विस्तार देने में होता है। आधुनिक तथा संक्रमणशील व्यवस्थाओ में अनौपचारिक जनमत मार्गदर्शकों के कौशल में पाये जानी वाली उपरोक्त भिन्नता के कारण, संक्रमणशील व्यवस्था में दोनों स्तरों पर संचार का वेग मे काफी असमानता उत्पन्न हो जाती है। संक्रमणशील व्यवस्थाओं का जनसंचार क्षेत्र, इसमें अपर्याप्त कर्मचारियों, तथा असंतोषजनक रुप से वित्त प्रबन्धित संगठन के कारण, यद्यपि ये परम्परगत रुप बंधी व्यवस्थाओं की संचारों के पुनः प्रसारण की क्षमता तो बहुत अधिक सीमा तक बढ़ा देते है, परन्तु ये संचार के अर्न्तराष्ट्रीय प्रवाह के साथ पूर्ण रुप से गति बनाये रखने में अक्षम होते हैं। संचार की वह सीमित दर जिस पर उप–व्यवस्थाएं जनसंचार व्यवस्था के प्रवाह को शुद्धता से परावर्तित कर सकती हैं, संक्रमणशील समाजों मे समान्य रुप से पायी जाने वाली एक प्रमुख तनाव को उत्पन्न करती है। क्योंकि अब यह स्पष्ट हो चुका है कि इन समाजों की समस्या सिर्फ अर्न्तराष्ट्रीय अथवा विश्व संस्कृति के तत्वों के साथ स्थानीय अभ्यासों तथा भावनाओं के साथ जोड़ने की नहीं है, अपितु उनके द्वारा प्रायः आधुनिकता की एक अधूरी अथवा गलत धारणाओं के साथ तथा स्थानीयता के आंशिक रुप से असंतुष्टि के साथ परिचालित होने की है।

संचार व्यवस्थाओं के उपरोक्त प्रारुप के आधार पर समकालीन भारतीय समाज में ग्रामीण संचार व्यवस्थाओं के प्रतिमानों को ऐतिहासिक सन्दर्भ मे तथा साथ ही पिछले दो दशकों में हुए वैश्वीकरण तथा संचार क्रान्ति के परिप्रेक्ष्य मे समझा जा सकता है।

भारत में ग्रामीण संचार व्यवस्था

स्वतन्त्रता से पूर्व भारत में ग्रामीण संचार व्यवस्था की प्रकृति प्राथमिक रुप से एक परम्परागत व्यवस्था थी जिसका प्रमुख आधार आमने–सामने का संचार तथा लोक माध्यम थे। संचार की प्रक्रिया दिन–प्रतिदिन की गतिविधियों का ही हिस्सा थी तथा इसके लिए कोई विशेष संस्थाएं तथा संचारकर्ता नहीं थे। संचार प्रक्रिया ग्रामीण समाज की अन्य संस्थाओं जैसे बाजार (हाट), मन्दिर/मस्जिद, चौपाल, मेले आदि की प्रक्रियाओं में समावेशित थी। इस संचार व्यवस्था का रुपान्तरण ब्रिटिश काल आधुनिक जनसंचार माध्यमों के आगमन से प्रारम्भ हुआ। सबसे पहले प्रिंट माध्यमों ने नगरीय क्षेत्रों मे अपनी पैठ बना ली तथा समाचार पत्रों, पत्रिकाओं व पुस्तकों का प्रकाशन किया जाने लगा। परन्तु इनका प्रसार गांवो में सामान्यतः नगण्य ही रहा जिसका एक बड़ा कारण ग्रामीण जनसंख्या में भारी मात्रा में अशिक्षा थी। जनसंचार माध्यमों का एक अन्य स्वरुप बीसवीं शताब्दी के पूर्व भाग में सिनेमा के रुप में आया; जब 1912 पहली मूक फिल्म 'पुंडालिक' बनी। इसका निर्माण एक ब्रिटिश कम्पनी के सहयोग से किया गया था। पहली भारतीय मूक फिल्म 'राजा हरिश्चन्द्र' 1913 में बनीं। अर्देशिर ईरानी

की फिल्म 'आलमआरा' पहली बोलती फिल्म (Talkies) थी, जिसके कारण सिनेमाघरों को टाकीज़ (Talkies) के नाम से जाना जाता था। इस काल मे सिनेमा का प्रभाव प्रायः नगरों तक ही सीमित रहा। आजादी के बाद के वर्षो में हिन्दी सिनेमा के साथ–साथ क्षेत्रीय सिनेमा के निर्माण में तेजी आयी। परन्तु ग्रामीण क्षेत्र के लोगों के लिए सिनेमा आर्कषण का एक बड़ा केन्द्र तो था परन्तु ज्यादातर टाकीजों के नगरों व कस्बों मे स्थित होने के कारण वे इसका आनन्द प्रायः किसी कार्यवश नगर आने पर ही ले पाते थे। जनसंचार माध्यमों के समुचित मात्रा में प्रसार के अभाव में सिनेमा के प्रचार हेतु चौराहों पर होर्डिंग्स, दीवारों पर पोस्टर लगाकर किया जाताथा। साथ ही तांगा अथवा साइकिल रिक्शा पर चारों ओर पोस्टर लगाकर इस पर ग्रामोफोन व एम्पलीफायर मशीन की सहायता से गानों को बजाया जाता था व बीच–बीच में सिनेमा की उद्घोषणा की जाती थी। इसके अतिरिक्त, सिनेमा के दो होर्डिंग्स को त्रिभुजाकार आकार देकर एक ट्राली पर रखकर बैंड–बाजे के साथ नगर की प्रमुख सड़कों पर घूमाया जाता था। 1960 से 1980 तक के दशक मे सिनेमा गांव व शहर दोनों आकर्षण का प्रमुख केन्द्र तो रहा परन्तु अभी भी इसकी पहुंच ग्रामीण जनसंख्या तक कम ही थी; क्षेत्रीय व स्थानीय प्रदशर्नी, मेलों आदि में कइ अस्थायी सिनेमाघर बनाकर फिल्मों का प्रदर्शन किया जाता जिसके प्रमुख दर्शक ग्रामीण व्यक्ति हुआ करते थे। कुछ प्रकरणों में जहाँ मेला पूरी रात चलता था; उदाहदणार्थ–मेरठ का नौचन्दी मेला, सिनेमा घरों में 4 की बजाय 6 शो कर दिये जाते थे (रात्रि में 12–3 व 3–6)। इस प्रकार सिनेमा धीरे–धीरे नगरीय व ग्रामीण जनसंख्या की प्रमुख आवश्यकता बन गया।

भारत के शहरों व कस्बों में पान की दुकान, चाय की दुकान, आदि उसी प्रकार से स्थानीय चर्चा व संचार व सूचना का केन्द्र रहे है जिस प्रकार इटली में तबाची (Tabachi) अथवा फ्रांस में टेबेक (Tabach)। इन स्थानों पर प्रायः व्यक्तियों का छोटा समूह (4–5 व्यक्तियों का) बना रहता है। यहां पर आपस में हर विषय पर चर्चा की जाती है; पान–सिगरेट के खरीदने व सेवन करने के सूक्ष्म अन्तराल मे कई प्रकार की सूचनाओं का आदान–प्रदान हो जाता है। यहाँ पर प्रायः एक –दो नियमित स्थानीय समाचार पत्र की हेड–लाईन व कभी–कभी पूरा अखबार भी पढ़ लेते है। इसी प्रकार से नाई की दुकान/पारलर्स में अखबार व फिल्मी पत्रिकाएं भी अपनी बारी का इन्तजार करते ग्राहकों के लिए आर्कषण का केन्द्र बन जाती हैं। इस प्रकार से ये परम्परागत व्यवसायिक केन्द्र संचार की प्रक्रिया मे अपनी भूमिका का निर्वाह करते जहाँ आमने–सामने का संचार व जनसंचार माध्यम मिश्रित प्रकार की संचार प्रक्रिया को जन्म देते हैं।

प्रिंट मीडिया–पुस्तकें, समाचार पत्र, पत्रिकाओं, की स्वतन्त्रता पूर्व ग्रामीण क्षेत्रों मे सीमित पहुँच थी। परन्तु इस काल में दो प्रमुख बुक डिपो–देहाती पुस्तक भंडार (दिल्ली) तथा गीता प्रेस (गोरखपुर) प्रमुख रुप से सामने आये जिन्होंने ग्रामीण व सामान्य जन की रुचि के साहित्य के प्रकाशन में बड़ा योगदान किया है। देहाती पुस्तक भंडार (नई सड़क, देहली) की स्थापना 1937 में लाला धोनीमल अग्रवाल ने की। अन्य पुस्तको के साथ–साथ धार्मिक व परम्परागत लोक साहित्य के प्रकाशन अद्भुत कार्य इस प्रकाशन ने किया तथा लोक साहित्य की प्रमुख कथाओं जैसे–सिंहासन बत्तीसी, बैताल पच्चीसी, आल्हा खण्ड काव्य, किस्सा भगत पूरन मल, नरसी जी का भात, किस्सा गोपी चन्द आदि अनेकों लोक कथाओं के ग्रामीण क्षेत्रों में प्रचार व प्रसार में सहायता की। आल्हा खण्ड काव्य वीर रस का एक अद्भुत ग्रन्थ है, यह न केवल ग्रामीण क्षेत्रों में गाया व सुना

जाता है अपितु इसका उपयोग भारतीय सेना में वीरता व जोश का संचार करने में भी किया जाता है। (विशेष रुप से युद्ध काल में)। इस प्रकार से ग्रामीण क्षेत्रों में आधुनिक जन संचार के इन साधनों मे से समाचार पत्र, पत्रिकाएं व पाठ्य–पुस्तकों व साहित्य के माध्यम से संचार केवल शिक्षित वर्ग तक ही सीमित रहा।

ग्रामीण भारत में साक्षरता की दर कम (1961 मे 24.24%; 1971 में 29.92%) होने के कारण आजादी के बाद के तीन दशकों मे प्रिंट–मीडिया का प्रभाव सीमित ही रहा। विभिन्न प्रसारण माध्यमों मे रेडियो का एक विशिष्ट स्थान है। दूसरे विश्वयुद्ध के समय युद्ध प्रोपेगन्डा में इसकी एक विशेष भूमिका रही थी। भारत में इंडियन स्टेट ब्रॉडकास्टिंग सर्विस (ISBS) का प्रारम्भ 1 अप्रैल 1930 को दो वर्षो के लिए प्रयोगात्मक आधार पर तथा मई 1932 में स्थायी तौर पर प्रारम्भ किया गया। 8 जून 1936 को इसका नाम बदलकर "ऑल इन्डिया रेडियों" कर दिया गया। 1956 में पुनः नेशनल पब्लिक ब्राडकास्टर ऑफ इंडिया के तौर पर उसका नाम बदल कर 'आकाशवाणी' कर दिया गया। वर्ष 1957 मे आल इंडिया रेडियों की वाणिज्यक सेवा 'विविध भारती' का प्रारम्भ हुआ जिसने भारत के ग्रामीण व नगरीय क्षेत्रों में मनोंरजन सामग्री प्रसारित करके श्रोताओं मे अपार लोकप्रियता प्राप्त की। इस प्रकार से 1960 व 1970 के दशकों मे रेडियों एक प्रबल जनसंचार माध्यम के रुप में उभरा। तत्कालीन सरकार ने इसके प्रसार हेतु काफी प्रयास किये। 1960 व 1970 के दशक में भारत को तीन युद्धों का सामना करना पड़ा। उस समय राष्ट्र की जनता को सम्बोधित करने में रेडियों की प्रमुख भूमिका रही। स्वयं जहाँ समाचार पत्र के माध्यम से सूचना प्राप्त करने में साक्षरता की कम दर बाधक थी, वही रेडियो में इस प्रकार की कोई बाधा नहीं थी। अतः रेडियो का प्रसार भारत में तेजी से होने लगा। प्रारम्भ मे रेडियो सैट बिजली से चलने वाली ट्यूब व वाल्व टेक्नॉलोजी पर आधारित थे तथा इनका आकार भी काफी बड़ा था। इस कारण से इसका प्रचलन शुरु में नगरों तक ही सीमित रहा क्योंकि भारत के ग्रामीण क्षेत्रों मे बिजली का नितान्त अभाव था। वर्ष 1957 में जापान में 'ट्रॅांजिस्टर ' पर आधारित सर्किट टेक्नॉलोजी से विकसित रेडियो का न केवल आकार छोटा हो गया अपितु इसकी पावर सप्लाई का स्त्रोत बैट्री सैल थे। इसको भारत में 'ट्रांजिस्टर रेडियो' के नाम से लोकप्रियता प्राप्त हुई। शीघ्र ही ये ग्रामीण भारत में संचार का एक प्रमुख माध्यम बन गया। फिर भी रेडियो लाइसेंस की अनिवार्यता तथा इसकी ऊंची कीमत के कारण गांवो मे इसका प्रसार धीमी गति से हो रहा था। 1970 मे दशक में ग्रामीण क्षेत्रों मे विवाह के समय दहेज में दिये जाने वाले आइटम मे इसका प्रमुख स्थान था। 1980 के दशक में रेडियो के संयोजन की तकनीकी स्थानीय स्तर पर फैल जाने के कारण इसकी कीमत काफी कम हो गयी तथा यह एक महत्वपूर्ण संचार माध्यम के रुप में ग्रामीण क्षेत्रों में फैल गया, यहां तक कि लोग खेतों और खलिहानों मे भी इसका प्रयोग करने लगे।

जनसंचार के अन्य महत्वपूर्ण माध्यम 'टेलीविजन' का प्रारम्भ प्रयोगात्मक आधार पर 1967–73 के मध्य स्टेट सैटेलाइट टेलीविजन एक्सपेरिमेन्ट (SITE) के रुप मे किया गया। इस परियोजना की सफलता मिलने के बाद भारत में सरकार द्वारा टेलीविजन पर कार्यक्रमों का प्रसारण प्रारम्भ किया गया जिसे 'दूरदर्शन' का नाम दिया गया। प्रारम्भिक वर्षो में यह नगरो तक ही सीमित था इसके प्रमुख कारण थे टैलीविजन की ऊंची कीमत, लाइसेंस की आवश्यकता, सीमित प्रसारण समय, ग्रामीण क्षेत्रों मे बिजली न होना या आपूर्ति न होना। इस कारण से इसका प्रसार भी बहुत धीमी गति से हुआ।

वर्ष 1982 में भारत मे नयी दिल्ली में 'एशियन गेम्स' का आयोजन किया गया था। एशियाई खेलों के लाइव प्रसारण को ध्यान मे रखते हुए भारत मे पहल बार रंगीन टी.वी. सैट को लॉन्च किया गया जिससे नगरीय क्षेत्रों में टेलीविजन की बिक्री में वृद्धि हुई तथा ब्लैक एण्ड व्हाइट टी.वी. की कीमतों में गिरावट हुई। इसके साथ ही टी.वी. कार्यक्रमों के प्रसारण को एक दिन मे तीन बार करने का निर्णय भी लिया गया। ग्रामीण इलाकों में अभी भी यह चुने हुए अभिजनों के गश्ह तक ही सीमित था। परन्तु यह अवश्य था कि टी.वी. को देखने इन घरों की बैठक (बाह्य
व्यक्तियों के बैठने का स्थल) अथवा घेर (घर से बाहर एक अन्य घर जहां घरेलू पशुओं के रहने चारा रखने, कृषि उपकरण रखने का पर्याप्त स्थान होता है; यहाँ पर प्रायः पुरुष ही रहते है; बेटियां बुजुर्ग महिलाएं यहाँ आ सकती है; रिश्तेदारों के आने पर उन्हें ठहराने की यहां पर समुचित व्यवस्था रहती है) पर काफी संख्या में ग्रामीण इकट्ठा हो जाते थे विशेष रुप से चित्रहार व फीचर फिल्म के प्रसारण के समय। समाचार प्रसारण के समय राष्ट्रीय व अर्न्तराष्ट्रीय राजनीति पर भी यहां जमकर चर्चा हो जाती थी। (चौहान 1989)।

वर्ष 1984 में दूरदर्शन पर एक धारावाहिक 'हम लोग' का प्रसारण प्रारम्भ हुआ जिसने भारत के नगरीय मध्यवर्ग के टी.वी. की ओर आकर्षित किया। यह भारत में दूरदर्शन का पहला 'सोप ऑपेरा' (सोप आपेरा एक रेडियो या टेलीविजन ड्रामा धारावाहिक जिसमें एक ही समूह की दैनिक गतिविधियों को चित्रण किया जाता है; पश्चिमी देशों में इसको आरम्भिक कार्यक्रम साबुन बनाने वाली कम्पनी द्वारा प्रायोजित करने के कारण इसको सोप ऑपेरा की संज्ञा दी गयी थी) इसे 1980 के दशक में एक मध्यवर्गीय परिवार के संघर्ष तथा महत्वाकांक्षाओं की कहानी को केन्द्र में रखा गया था। इसका निर्माण मैक्सिकन टेलीविजन सीरीज, वैन कॉनमिगो (Ven conmigo) की लाइन पर शिक्षा–मनोरंजन पद्धति का उपयोग करके किया गया था। इसका विचार तत्कालीन सूचना व प्रसारण मंत्री वसन्त साठे को उनकी 1982 की मेक्सिको यात्रा के बाद आया। शीघ्र ही 'हम लोग' धारावाहिक की कथावस्तु पर काम करने की जिम्मेदारी लेखक मनोहर श्याम जोशी को व निर्देशन पी. कुमार वासुदेव को दिया गया। शीर्षक गीत का संगीत अनिल बिस्वास द्वारा रचित किया गया। प्रसिद्ध सिने कलाकार अशोक कुमार ने एंकर की भूमिका में धारावाहिक की कथा पर अपनी रोचक टिप्पणियों से दर्शकों को बड़ा प्रभावति किया। 17 महीने की प्रसारण अवधि में 4,00,000 से भी अधिक पत्र अशोक कुमार को प्राप्त हुए, जो अधिकतर युवाओं द्वारा लिखे गये थे जिनमें उन्होंने उनसे अपने माता–पिता को युवाओं को अपनी पसन्द का जीवन साथी चुनने के लिए समझाने का आग्रह किया था।

इसके बाद एक अन्य धारावाहिक 'बुनियाद' (डायरेक्टर रमेश सिप्पी) ने 1947 के भारत–विभाजन के बाद के संघर्ष की कथा को प्रस्तुत किया। इन दोनों धारावाहिकों ने भारतीय दर्शकों को दूरदर्शन को सफलता पूर्वक स्थापित करने में एक महत्वपूण भूमिका निभायी। वर्ष 1987–88 मे प्रसिद्ध फिल्मकार रामानन्द सागर ने दूरदर्शन पर प्रसारण के लिए 'रामायण' धारावाहिक का निर्माण किया। इसका प्रसारण प्रत्येक रविवार को प्रातः 10 बजे किया जाता था। यह अभी तक का सबसे बड़ा व पहला धारावाहिक था जिसने दर्शकों को आकर्षित करने का एक ऐतिहासिक रिकार्ड कायम किया। यह महाकवि तुलसीदास के रामचरितमानस तथा बाल्मिकी रामायण पर आधारित था। रामायण के प्रति भारतीय जनमानस की आस्था के फलस्वरुप इसने दर्शकों को अपने पाश में बांध लिया। इस ध

ाारावाहिक को देखने के लिए घरों व दुकानों पर लोगों की भीड़ लग जाया करती थी। रविवार का दिन होने के कारण कोई भी इस धारावाहिक को छोड़ना नहीं चाहता था। इसलिए ग्रामीण व नगरीय क्षेत्रों में बड़ी संख्या में टी० वी० सैट खरीदे गये; अपितु कई लोगों ने अपनी दिनचर्या में भी परिवर्तन कर लिया था। इस धारावाहिक के समय लोगों ने उदारतापूर्वक अपने ड्रॅाइग रुम के दरवाजे सभी के लिए खोल दिये थे। यहां तक कि शहरों में ट्रैफिक के आवागमन में भी कमी आ गयी थी। इस धारावाहिक ने दूरदर्शन को नगरीय व ग्रामीण आंचलों में लोकप्रिय बनाने में एक बड़ी भूमिका का निर्वाह किया तथा ग्रामीण क्षेत्रों में टी० वी० सैट अब विवाह के समय दिये जाने वाले दहेज का एक प्रमुख आइटम माना जाने लगा (इससे पूर्व रेडियो को यह स्थान प्राप्त था)। 'रामायण' धारावाहिक की अपार सफलता के पश्चात एक अन्य महत्वपूर्ण धारावाहिक 'महाभारत' के 94 एपिसोड 2 अक्टूबर 1988 से 24 जून 1990 को दूरदर्शन के नेशनल चैनल पर प्रारम्भ किया गया। इसके प्रोड्यूसर व निर्देशक क्रमशः बी० आर० चौपड़ा तथा रवि चौपड़ा थे। यह वेद व्यास द्वारा लिखित मूल महाभारत पर आधारित धारावाहिक था। इसका संगीत राजकमल ने तथा इसकी पटकथा राही मासूम रजा ने लिखी थी। प्रत्येक एपिसोड 45 मिनट का था। इसका शीर्षक गीत श्रीमद् भगवत गीता के दो श्लोक थे जिनको प्रसिद्ध गायक महेन्द्र कपूर ने अपनी आवाज दी थी। 'समय' को एक व्यक्ति के रुप में दर्शाते हुए धारावाहिक के प्रारम्भ में घटना–क्रम की व्याख्या हेतु हरीश भिमानी की प्रभावशाली आवाज का प्रयोग किया गया था। 'रामायण' धारावाहिक की भांति 'महाभारत' को भी अपार सफलता प्राप्त हुई जिसने दूरदर्शन को भारत के कोने–कोने तक पहुँचाने मे महत्वपूर्ण योगदान दिया। तब से लेकर आज तक टी० वी० का प्रसार तीव्र गति से ग्रामीण क्षेत्रों में जारी है। तथा लगभग 90% ग्रामीण जनता तक इसकी पहुँच है। 1980 के दशक में केबिल टी० वी० को आमोद–प्रमोद के एक विकल्प के रुप में स्थापित करने के प्रयास किये गये क्योंकि उस समय टी० वी० पर एक सीमित समय तक ही प्रसारण किया जाता था। परन्तु इनमे कोई महत्वपूर्ण सफलता प्राप्त नहीं हो सकी तथा यह मुम्बई जैसे महानगरों तक ही सीमित रहा। 1990 के दशक के प्रारम्भ में केबिल टी० वी० ने दूरदर्शन को चुनौती प्रस्तुत करना प्रारम्भ किया तथा सभी छोटे–बड़े शहरों में इसकी लोकप्रियता में काफी वृद्धि हो गयी। वर्ष 1990 मे ईराक व कुवैत के मध्य युद्ध प्रारम्भ हो गया जिसे खाड़ी युद्ध के नाम से जाना जाता है। इसका कवरेज सैटेलाइट के माध्यम से CNN चैनल द्वारा एशिया तथा पश्चिमी यूरोप के देशों में टी० वी० पर प्रसारित किया गया। भारत में दूरदर्शन पर इसका प्रसारण नहीं किया गया था। CNN का प्रसारण सैटेलाइट के माध्यम से स्थानीय केबिल नेटवर्क पर किया गया जो काफी लोकप्रिय हुआ विशेष रुप से नगरों में। 1992 में हांगकांग केन्द्रित कम्पनी समूह स्टार टैलीविजन (Satellite Television Asian Region) ने केबिल टी० वी० नेटवर्क के माध्यम से 5 चैनलों का प्रसारण प्रारम्भ किया–स्टार प्लस, बी० बी० सी०, एम० टी० वी०, प्राइम स्पोर्टस व जी० टी० वी०। इनमें से पहले चार अंग्रेजी के तथा पांचवां हिन्दी चैनल था। इन सभी चैनलों पर 24 घंटे कार्यक्रम प्रसारित होते थे जो भारतीय दर्शकों के लिए एक नया अनुभव था। स्टार टी० वी० नेटवर्क के आगमन ने केबिल टी० वी० के लिए एक सुनहरा अवसर प्रदान किया। भारतीय मध्यम वर्ग का दर्शक जो दूरदर्शन के क्रार्यक्रमों से ऊब चुका था वह इन नये चैनलों की चकाचौंध से आकर्षित हो गया। देखते ही देखते नगर के प्रायः सभी घरों व दुकानों में बिजली व टेलीफोन के खम्भे व मकानों की छतों पर केबिल नेटवर्क का जाल बिछ गया। डिश आपरेटरों ने स्थानीय स्तर पर फिल्म और चित्रहार टाइप के अपने कार्यक्रम

भी एक अलग चैनल के माध्यम से देने प्रारम्भ कर दिये। पाकिस्तानी नाटक, CNN, ATN, PTV जैसे चैनल भी केबिल TV पर दिखाये जाने लगे। इस प्रकार से भारतीय दर्शकों को दूरदर्शन का एक विकल्प उपलब्ध हो गया। परन्तु ग्रामीण क्षेत्रों में अभी भी दूरदर्शन की प्रमुख रुप से हावी था। (सिंह 1995, 2002)। केबिल टी० वी० का मासिक किराया 150–200 रु० था। इसलिए इसका प्रभाव नगरीय उच्च व मध्य वर्ग तक ही सीमित होकर रह गया।

वर्ष 2003 में नयी संचार तकनीकी का प्रादुर्भाव हुआ जिसने केबिल टी० वी० को चुनौती प्रस्तुत की। यह थी–'डायरेक्ट टू होम' (DTH) सर्विस का प्रारम्भ होना। इस समय तक केबिल टी० वी० पर चैनल की संख्या बढ़कर लगभग 100 के करीब हो गयी थी। डी० टी० एच० एक क्रान्तिकारी तकनीकी थी जिसमें एक छोटी डिश के द्वारा सैटेलाइट से सीधे सिगनल प्राप्त करके 'सैट टाप बाक्स' के माध्यम से अनेकों चैनलों को टी० वी० पर रिमोट कन्ट्रोल की सहायता से देखा जा सकता है। भारत में सबसे पहली डी० टी० एच० सेवा डिश टी० वी० द्वारा प्रारम्भ की गयी जो कि जी० टी० वी० (Zee TV) की एक कम्पनी थी। इसके पश्चात टाटा स्काई (Tata sky) कम्पनी ने 2006 व अन्य कई कम्पनियों द्वारा यह सेवा प्रदान करने को सिलसिला प्रारम्भ हुआ। इसकी सफलता ने दूरदर्शन को भी यह तकनीकी अपनाने पर मज़बूर किया। जिसके फलस्वरुप आज प्रायः सभी टी० वी० सैट टाप बाक्स के माध्यम से ही कार्यक्रम रिसीव करते हैं। कई स्थानीय कम्पनियों ने मुफ्त में टेलीकास्ट किये जाने वाले कार्यक्रमों को देखने के लिए डिश व सैट टॉप बाक्स बाज़ार में उपलब्ध करा दिये है। इनका प्रयोग करने पर कोई मासिक शुल्क नहीं लगता। इस प्रकार से गरीब व निम्न मध्यम वर्ग के लिए यह सुविधा काफी उपयोगी है। यही कारण है कि ग्रामीण क्षेत्रों में भी पिछले एक दशक में टी० वी० का प्रसार तेजी से बढ़कर लगभग शत–प्रतिशत हो गया है जो कि संचार व्यवस्था की दृष्टि से एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है।

भारत में टेलीकाम उद्योग सरकारी प्रतिष्ठान बी० एस० एन० एल० (भारत संचार निगम लिमिटेड) की छत्रछाया में बहुत धीमी गति व मनमाने ढंग से संचालित किया जाता रहा था। स्वतन्त्रता–प्राप्ति के बाद के चार दशकों में टेलीफोन एक 'स्टेटस सिम्बल' माना जाता रहा तथा इसका स्वामित्व व उपयोग सरकारी/प्राइवेट प्रतिष्ठानों व अधिकारी व उच्च वर्ग के द्वारा अधिक किया जाता रहा। पोस्ट आफिस व टेलीग्राफ ऑफिस में ट्रंक काल की सुविधा सामान्य जन के लिए उपलब्ध थी परन्तु मंहगी थी। 1980 के दशक में इनसैट–बी उपग्रह के लांच होने के बाद से एस० टी० डी० (Straight Trunk Dial) सेवा प्रारम्भ हुई जिसने टेलीकॉम संचार के क्षेत्र में क्रान्ति लाने का कार्य किया। सरकार द्वारा एस० टी० डी० पी० सी० ओ० बूथ (STD-PCO Booth) के कनेक्शन दिये जाने के फलस्वरुप सामान्य जन को यह सुविधा उपलब्ध होने लगी तथा घरों में दिये जाने वाले फोन कनैक्शन पर भी यह सुविधा उपलब्ध थी। फलस्वरुप दूर संचार सेवा का नगरीय मध्यम वर्ग में तेजी से प्रसार हुआ। एस० टी० डी०–पी० सी० ओ० बूथ गली–गली में खुलने के कारण निम्न आय वर्ग द्वारा भी इसका प्रयोग सभी छोटे–बड़े नगरों में होने लगा। परन्तु ग्रामीण क्षेत्रों में इसका प्रचलन अभी भी बहुत कम था।

1990 के दशक में टैलीकाम उद्योग में तीव्र गति बाजारी–उदारवाद (market liberalism) का प्रादुर्भाव तथा वृद्धि हुई तथा आज यह दुनिया का सबसे तीव्र गति से विकास की ओर अग्रसर, प्रतियोगी बाजार बन गया है। 1997 मे सरकार ने ट्राई (TRAI-Telecom Regulatory Authority

of India) को गठित किया जिसने टेलीफोन काल की दर व नीतियों के निर्धारण में सरकार के हस्तक्षेप को कम किया। वर्ष 2000 तक सरकार इस क्षेत्र में और अधिक उदार हो गयी तथा इसने सेलुलर कम्पनियों को उदारतापूर्वक लाइसेंस प्रदान करना प्रारम्भ किया। जिससे कि कॉल दर में काफी कमी आयी। पिछले एक दशक में इसका विस्तार अत्याधिक तीव्र गति से दिखायी पड़ता है जिसके फलस्वरुप आज सेलुलर (मोबाइल) फोन नगरीय व ग्रामीण क्षेत्रों मे लगभग शत–प्रतिशत लोगों तक पहुँच चुका है। तथा संचार–क्रान्ति लाने मे इस का एक बड़ा योगदान है।

उपरोक्त विवेचन से हम भारतीय समाज में ग्रामीण संचार व्यवस्था की प्रकृति का विश्लेषण कर सकते है। पाई (Pye:1963) के अनुसार संक्रमणशील संचार व्यवस्था में ग्रामीण तथा नगरीय संचार प्रक्रियाओं के एकीकरण का अभाव पाया जाता है। भारत मे स्वतन्त्रता प्राप्ति के प्रथम चार दशकों में परम्परागत व आधुनिक संचार व्यवस्थाएं विखण्डित तथा पृथक थीं इनके मध्य एकीकरण का अभाव था। परन्तु पिछले दो दशकों में टी० वी०, कुछ मोबाइल फोन व इन्टरनेट के तेजी से प्रसार के कारण आज लगभग सारी जनसंख्या संचार व्यवस्था से भली भाँति जुड़ गयी है। टेलीविजन और मोबाइल फोन आज सम्पूर्ण ग्रामीण जनसंख्या को कवर कर रहे हैं। इस प्रकार से सूचना का प्रवाह ग्रामीण स्तर तक सूचना भेजने व संचार अन्तक्रिया करने की सुविधा व्हाटऐपस व फेसबुक, ट्वीटर जैसी सोशल नेटवर्किंग साइट्स के द्वारा प्रदान की जाने लगी है। इस प्रकार से आज की ग्रामीण संचार व्यवस्था, उच्च आधुनिक संचार व्यवस्था अथवा वैश्विक संचार व्यवस्था से तेजी के साथ एकीकृत हो रही है। अतः अवधारणात्मक स्तर पर चौथे प्रकार की संचार व्यवस्था भी अस्तित्व में आ रही है जिसे हम उच्च–आधुनिक अथवा वैश्विक संचार व्यवस्था कह सकते है जो स्थानीय, क्षेत्रीय, राष्ट्रीय संचार व्यवस्थाओं को परस्पर एकीकृत कर रहीं है तथा विभिन्न संचार माध्यम भी अब एकीकृत होकर मल्टी–मीडिया के रुप में उभर रहे हैं।

References

Beck, Ulrich. 1997: *Was ist Globalisierung?* Frankfurt: Suhrkamp.

Chauhan, Brij Raj 1989: Rural-Urban Articulation, Udaipur: A. C. Brothers.

Giddens, Anthony 1999: Globalisation, *Director's Lecture: 10th November, 1999, http://www.lse.ac.uk/Giddens/reith_99/Default.htm.*

Held, David, Anthony McGrew, David Goldblatt, and J. Perraton. 1999: *Global Transformations: Politics, Economics and Culture*. Cambridge: Polity.

Hopkins, Terence K., and Immanuel Wallerstein (Eds.). 1996: *The Age of Transition: Trajectory of the World-System, 1945-2025*. London and New York.

Hirst, Paul, and Grahame Thompson. 1996. *Globalization in Question*. Cambridge: Polity.

Martin, Hans-Peter, and Harald Schumann. 1997: *The Global Trap: Globalization and the Assault on Prosperity and Democracy*. London and New York, and Sydney: Zed Books and Pluto Press Australia.

Ohmae, Kenichi. 1991: *The Borderless World*. New York: Harper Collins.

Ohmae, Kenichi. 1995: *The End of the Nation-State: The Rise of Regional Economies*. New York: Harper Collins.

Pye, Lucian W. 1963: Communication and Political Development, Princeton: Prenceton Univ. Press.

Reich, Robert B. 1991: *The Work of Nations*. London: Simon and Schuster.

Schnapper, Dominique. 1994: *La Communauté des Citoyens*. Paris: Gallimard.
Singh, V. P. 1995: "Satellite Television and Middle Class Youth in Bhopal City", *Emerging Trends in Development Research*, Vol. 2, No. 1&2, Jan.-July, 1995, pp. 7–20.
Singh, V. P. 2002: "Mass Media Communication, Modernity and Social Structure" *Emerging Trends in Development Research*, Volume 9, N0. 1&2, January-July, 2002, pp. 3-28.